संकट के दौर में संस्कृति का आईना : फिल्म 'अस्सी' क्यों है ज़रूरी ?

-सोनाली

फ़िल्म से एक दृश्य

जब कोई समाज किसी बहुत बड़े संकट से गुज़र रहा होता है, उस वक्त उसके हर पहलू की छोटी-से-छोटी गतिविधि और हर रुझान बेहद अहम हो जाता है। फिलहाल भारतीय समाज ऐसे ही एक गहरे संकट के दौर से गुजर रहा है। इस संकट की सबसे भयावह अभिव्यक्ति है – लगातार बढ़ती हिंसा। यह हिंसा किसी एक रूप में नहीं, बल्कि कई रूपों में हमारे सामने आती है। कहीं मॉब लिंचिंग की घटनाएं हैं, तो कहीं बुलडोज़र के नाम पर हो रहा अन्याय। जनता के संवैधिनिक अधिकारों का हनन आम बात हो गया है। दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के खिलाफ अपराधों के आंकड़े लगातार बढ़ रहे हैं और नियम-कायदों का खुलकर उल्लंघन हो रहा है। ये सब हिंसा के वो रूप हैं जो आम लोगों के जीवन को गहराई से प्रभावित करते हैं।

इस हिंसा को रोकना काफी हद तक समाज की वैचारिक प्रगतिशीलता पर टिका है। समाज के विभिन्न घटक इस संकट के बढ़ने और इससे लड़ने, दोनों ही प्रक्रियाओं में अहम भूमिका निभाते हैं। इनमें सांस्कृतिक संसाधन और अभिव्यक्तियाँ

विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। सांस्कृतिक क्षेत्र यानी साहित्य, सिनेमा, संगीत, नाटक और कला, बाकी सभी क्षेत्रों के मुकाबले ज्यादा सूक्ष्मता से काम करते हैं और इनका प्रभाव भी गहरा और स्थायी होता है। यही वजह है कि किसी भी समाज की प्रगतिशीलता का अंदाजा उसके सांस्कृतिक परिदृश्य को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है।

पिछले एक दशक में दक्षिणपंथ के उभार ने भारतीय समाज में हिंसा और हिंसक प्रवृत्तियों को किस हद तक बढ़ावा दिया है, इसकी झलक हमारी फिल्मों में साफ देखी जा सकती है। खासकर मुंबई स्थित हिंदी फिल्म उद्योग में ऐसी कई फिल्में बनी हैं जो या तो इस हिंसा को महिमामंडित करती हैं या फिर सामाजिक सरोकारों से किनारा करती हुई नजर आती हैं। लेकिन हर दौर में कुछ अपवाद भी होते हैं – कुछ ऐसी फिल्में जो अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को समझती हैं और संकट के खिलाफ एक सार्थक आवाज बनकर उभरती हैं।

ऐसी ही एक फिल्म है अनुभव सिन्हा निर्देशित 'अस्सी'। यह फिल्म अपने मूल विषय – महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध – के साथ-साथ हिंसा की उस व्यापक प्रवृत्ति की भी पड़ताल की कोशिश करती है जो आज हमारे समाज का सबसे बड़ा संकट बन चुकी है। इस फिल्म को खास बनाने वाली कई और भी बातें हैं, जो इसे आम सिनेमा से अलग और सार्थक बनाती हैं।

सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि फिल्म यौन हिंसा की भयावहता को पूरी गंभीरता के साथ दिखाने के बावजूद पीड़िता के पूरे अस्तित्व को उस एक घटना में सिमटकर नष्ट नहीं होने देती। अक्सर हमारे समाज और सिनेमा में यह प्रवृत्ति देखी गई है कि यौन अपराध की शिकार महिला की पहचान सिर्फ उस एक घटना से हो जाती है। उसके सपने, उसकी महत्वाकांक्षाएं, उसका व्यक्तित्व सब कुछ उस दर्दनाक अनुभव के आगे गौण हो जाता है। 'अस्सी' इस खतरनाक सोच को चुनौती देती है। फिल्म साफ संदेश देती है कि यौन अपराध, चाहे वह कितना भी घृणित और कल्पना से परे क्यों न हो, उसे पीड़िता की पूरी जिंदगी पर हावी नहीं होने दिया जाना चाहिए। पीड़िता भी सिर्फ पीड़िता नहीं होती, बल्कि वह एक इंसान होती है जिसके सपने होते हैं, जो आगे बढ़ सकती है और जिसका अपना एक अलग व्यक्तित्व होता है। फिल्म इस मानवीय दृष्टिकोण को बखूबी पेश करती है।

दूसरी और शायद सबसे अहम बात यह है कि 'अस्सी' कंगारू कोर्ट या भीड़ की अदालत की अवधारणा को पूरी तरह खारिज करती है। आज के दौर में जहां सोशल मीडिया के कोर्ट में फैसले सुनाए जाते हैं और भीड़ कानून अपने हाथ में लेने को उतारू रहती है, यह फिल्म एक अलग और संवैधानिक रास्ता दिखाती है। फिल्म अपराधिक न्याय के उस बुनियादी सिद्धांत के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध है कि कोई अपराध हुआ या नहीं और उसके लिए क्या सजा होगी, यह फैसला सिर्फ अदालत ही करेगी और वह भी विधि सम्मत प्रक्रिया के तहत। फिल्म बदले की भावना से परे हटकर न्याय की उस व्यवस्था को बरकरार रखती है जो एक सभ्य और लोकतांत्रिक समाज की पहचान होती है। यह दिखाती है कि सही मायनों में न्याय वही है जो अदालत में सबूतों और गवाहों के आधार पर स्थापित हो, न कि सड़कों पर भीड़ के गुस्से से।

तीसरा और व्यापक संदेश जो यह फिल्म देती है, वह है आत्मचिंतन का। 'अस्सी' हमें इस तथ्य पर गहराई से सोचने को मजबूर करती है कि एक समाज जो तेजी से असहिष्णु और हिंसक होता जा रहा है, उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह रुककर आत्मनिरीक्षण करे। फिल्म सवाल उठाती है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को क्या सिखा रहे हैं। यह महज किताबी शिक्षा की बात नहीं है, बल्कि उस समग्र संस्कार और परवरिश की बात है जो एक बच्चे को घर और समाज से मिलती है। फिल्म रेखांकित करती है कि अगर हमें हिंसा के इस दौर को रोकना है तो हमें अपने बच्चों को संवेदनशील, सहिष्णु और न्यायप्रिय इंसान बनाना होगा। यह सिर्फ स्कूलों की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है।

आज जब हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य पर अक्सर वही फिल्में हावी रहती हैं जो हिंसा को महिमामंडित करती हैं या सामाजिक मुद्दों से आंखें मूंद लेती हैं, 'अस्सी' जैसी फिल्में उम्मीद की किरण की तरह दिखती हैं। यह फिल्म सिर्फ एक मनोरंजन का जरिया नहीं है, बल्कि उस वैचारिक प्रगतिशीलता की मिसाल है जिसकी आज के भारतीय समाज को सख्त जरूरत है। यह हमें याद दिलाती है कि सिनेमा सिर्फ व्यवसाय नहीं, बल्कि एक जिम्मेदारी भी है। और इस जिम्मेदारी को निभाते हुए 'अस्सी' न सिर्फ महिलाओं के खिलाफ हिंसा के सवाल पर, बल्कि न्याय की हमारी समझ और हमारी आने वाली पीढ़ियों के भविष्य पर भी एक सार्थक बहस छेड़ती है। ऐसे में यह फिल्म उन गिनी-चुनी कृतियों में शुमार की जा

सकती है जो संकट के इस दौर में समाज का आईना बनकर हमें अपनी असल तस्वीर दिखाती हैं और बदलाव का रास्ता भी सुझाती हैं। सिनेमा के सौंदयशास्त्र के आधार पर ‘अस्सी’ का विश्लेषण इस कला के जानकरों और फ़िल्म समीक्षकों का विषय है, और यह लेख ऐसा करने का दावा नहीं करता। मौजूदा दौर में अस्सी एक अच्छी या बुरी फ़िल्म नहीं, बल्कि एक ज़रूरी फ़िल्म है।